क्या जाति-प्रथा समाप्त की जा सकेगी?

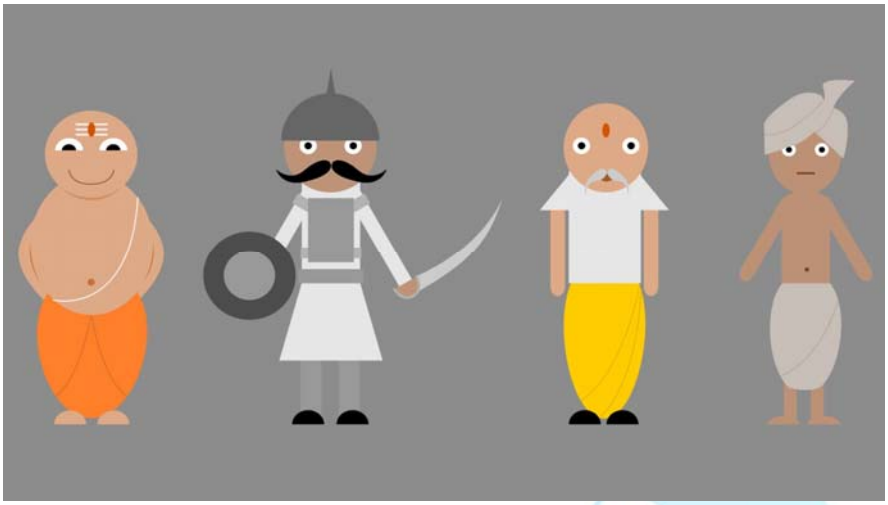

संविधान के निर्माता कहे जाने वाले डॉ॰भीमराव आंबेडकर ने अपने एक भाषण का शीर्षक 'जाति का लोप' रखा था, जिसे वे कभी सार्वजनिक रूप से नहीं पढ़ पाए। 1935 के आसपास का समय, ऐसा समय एक था, जब राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ पूरा देश सामाजिक सुधार की लहर से घिरा हुआ था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जाति विरोधी आंदोलन समाप्त हो गए। जाति-व्यवस्था के विरोध की जगह जातियों की एकजुटता ने ले ली। दलित और उत्पीड़ित वर्ग का उत्थान करने के लक्ष्य से भी एक तरह से जाति-प्रथा का निस्तारण किया जा सकता है। परन्तु आज कोई भी राजनैतिक दल ऐसा करने में रूचि लेता दिखाई नहीं देता।

प्रश्न यह है कि भारत में व्याप्त जाति-प्रथा के साथ क्या भारत विश्व में एक प्रमुख शक्ति बन सकता है? क्या हमारे समाज में फैली जातिगत असमानता के साथ भारत एक पूर्ण प्रजातांत्रिक देश बन सकता है? क्या वह ऐसी असमानता के साथ संविधान में वर्णित उदारता के वायदों को पूरा कर सकता है?

प्रजातांत्रिक राजनीति में आज लोग अल्पकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दौड़ में प्रजातंत्र के दीर्घकालिक लक्ष्यों को भूल गए हैं। नेताओं का पूरा ध्यान आने वाले चुनावों पर होता है। खाप पंचायतों के समक्ष सिर नवाकर या अगड़ी जातियों को भी आरक्षण देने का वायदा करके अगर वोट मिलते हों, तो ले लो। जातियों को खत्म करने की बात बाद में देखी जाएगी। हर चुनाव में ऐसा ही कुछ दृश्य होता है। जाति-प्रथा का विरोध करना तो अब एजेंडे से बाहर ही हो गया है, जबकि प्रतिदिन इसकी आवश्यकता महसूस की जा रही है। किसी दलित युवक को मारने, किसी लड़की के अपहरण और बलात्कार तथा जाति की रक्षा के नाम पर प्रेमी जोड़े की हत्या करने की खबरें लगभग हर दिन देखी, सुनी या पढ़ी जा सकती हैं। इन सबके पीछे जातिगत असमानता ही एक कारण होती है।

यहाँ हिन्दुत्व पर भी प्रश्न उठता है। हिन्दुत्व के अंतर्गत क्या हिन्दुओं की एकजुटता जाति नामक शत्रु का अंत करने का कोई प्रयास नहीं कर सकती? दरअसल, हिन्दुत्व तो हिन्दुओं को एकजुट करने का प्रयास करता है, लेकिन यहाँ उनका जाति अनुक्रम आड़े आ जाता है। गुजरात के ऊना में पाँच दलित युवकों को इसलिए मारा गया, क्योंकि वे एक मृत गाय की खाल निकाल रहे थे। यूँ तो हिन्दु धर्म में यह दलितों का ही काम है। लेकिन उस समय हिन्दुत्व के नाम पर चलाई गई गौ-माता की राजनीति ने हिन्दू धर्म के अनुक्रम के साथ-साथ उसकी एकजुटता को भी धो दिया।

हिन्दुत्व दो घोड़ों पर सवार होना चाहता है। एक तरफ तो वह "मनुस्मृति" के अंतर्गत वर्णित जाति-प्रथा का समर्थन चाहता है, तो दूसरी ओर हिन्दू एकजुटता की बात करता है। ऐसा संभव नहीं है। क्यों नही हिन्दू धर्म के ही अद्वैत के दर्शन का प्रचार-प्रसार करके उसे प्रयोग में लाया जाता, जिसमें जातियों से दूर प्रकृति के प्रत्येक सृजन को केवल और केवल आत्मा की दृष्टि से देखा गया है? इसी दर्शन के आधार पर केरल के संत श्री नारायण गुरू ने जातिगत अंतर को मिटाने की बात की थी। अद्वैत तो ऐसा दर्शन है, जो जाति क्या धर्म को भी नहीं मानता। उसके लिए तो प्राणी मात्र ही आत्मा है।

कुल-मिलाकर, मुसलमानों को अपने दुश्मन की तरह चित्रित करना या हिन्दुओं में निचली जातियों के लोगों पर मनमाने अत्याचार की छूट देना हिन्दुत्व की समस्या है।दूसरी ओर, यदि हम गैर हिन्दुत्व राजनीति की बात करें, तो हम देखते हैं कि डॉ०आंबेडकर ने जाति समस्या को दूर करने के लिए अनेक अंतरजातीय विवाह कराए। बढ़ते शहरीकरण ने वर्तमान में आंबेडकर के दिखाए पथ के अनुसरण को सुगम बना दिया है। किसी नगर में नौकरी करने वाले दो लोग किसी की जाति से प्रभावित नहीं होते। बल्कि वे एक-दूसरे की आय एवं दक्षताओं से प्रभावित होते हैं। एक ही टीम में काम करते हुए वे एक-दूसरे के आचार-व्यवहार से प्रभावित होते हैं। शहरीकरण जितना बढ़ेगा, सामाजिक जीवन में जाति एवं समुदाय की जड़ता उतनी ही कम होती जाएगी।

शहरीकरण आर्थिक विविधता से संचालित होता है। अब अधिक से अधिक रोजगार सेवा और उद्योग क्षेत्र में आ रहे हैं। इसके लिए नौजवानों को गांवों से शहरों की ओर जाना पड़ रहा है। आर्थिक प्रगति जितनी तेजी से होगी, उतनी ही अधिक आर्थिक विविधता बढ़ेगी, उतने ही अधिक गैर परंपरागत रोजगार के अवसर पनपेंगे और इन सबके बीच लोग अपने परंपरागत वातावरण से बाहर निकलेंगे।

यही करण है कि वैश्विक प्रगति उच्च स्तरीय शिक्षा एवं स्वास्थ्य किसी नौजवान के जीवन को नए आयामों से भर देते हैं, जिसका एक पहलू जातिगत भेद को मिटाना भी है।

'द इकॉनॉमिक टाइम्स' में टी.के.अरूण के लेख पर आधारित।